International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 12-01-2022, Accepted: 27-01-2022, Published: 12-02-2022
Volume 8, Issue 1, 2022, Page No. 124-128

महान शिक्षाविद्, राष्ट्रपति एवम भारतरत्न डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की दार्शनिक विचारधारा

विभा भारद्वाज
प्राचार्या, आर्य कन्या (पी0जी0) कालिज, हापुड़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
वर्तमान शोध पत्र में महान शिक्षाविद् डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की दार्शनिक विचारधारा का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने भारत के राष्ट्रपति का कार्यकाल भी बहुत अच्छी तरह से निभाया जिसके लिए उन्हें भारत के सर्वोत्तम पदक भारत रत्न प्रदान किया गया। डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के दार्शनिक विचारों का अध्ययन करने` बाद हम सहज ही कह सकते हैं कि डॉ0 राधाकृष्णन एक महान व्याख्याकार थे। उनके दर्शन का अपना एक दृष्टिकोण अवश्य है। तथापि उनका दार्शनिक धरातल वेदान्तीय विचारों से अनुप्राणित है। डॉ0 राधाकृष्णन के द्वारा प्रतिपादित दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यही रही है कि हम उनमें प्राचीनतम दार्शनिक धारणाओं से लेकर आधुनिकतम भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक विचारों का विवेचन पाते हैं तथा साथ ही उनका समन्वय भी पाते हैं। उनके अनुसार भारतीय दर्शन उच्च बौधिक स्तर पर विशाल एवं सम्पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है जिसके अध्ययन से हमारे विचार न केवल प्रकाशान्वित होते हैं बल्कि उनके अध्ययन के पश्चात हम वहाँ नही रहते जहाँ पहले थे।

मूल शब्दः महान शिक्षाविद्, राष्ट्रपति, भारत रत्न, दार्शनिक विचारधारा

प्रस्तावना
यूनान के महान दार्शनिक एवं विचारक प्लेटो ने एक बार राजनैतिक विवेचना के सन्दर्भ में लिखा था, 'कोई भी राष्ट्र तब तक न तो प्रगति कर सकता है और न ही बौद्धिक प्रौढ़ता ही ग्रहण कर सकता है, जब तक या तो दार्शनिक स्वयं शासन न करें अथवा राज्य का संचालन करने वाले दर्शन से अनुप्रेरित न हों।' यह गर्व की बात है कि भारतीय गणतन्त्र ने आधुनिक युग में पहली बार एक दार्शनिक को अपना सर्वोच्च शासक नियुक्त कर वर्षो पूर्व कहे गये प्लेटों के शब्दों को सार्थकता दी, क्योंकि राधाकृष्णन एक राजनीतिज्ञ ही नहीं वरन् एक महान शिक्षाविद् प्रचारक और सबसे परे एक महान दार्शनिक थे। 1962 में राधाकृष्णन भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित हुये। राधाकृष्णन के राष्ट्रपति पद पर आसीन होने पर सुप्रसिद्ध दार्शनिक बट्रेण्ड रसल ने कहा था कि उनके राष्ट्रपति पर आसीन होने का अर्थ दर्शन का सम्मान ही है। प्लेटों की आकांक्षा थी कि एक दार्शनिक को ही राजा होना चाहिए। भारत की यह महानता है कि उसने प्लेटों के इस स्वप्न को साकार किया है।"[1]
राष्ट्रपति भवन में उनका जीवन अत्यन्त सरल, सहज और सन्तों की तरह था। उनका भोजन साधारण और शाकाहारी था। वे जनता की शिकायतों को सुनते थे और उनको दूर करने का यथासम्भव प्रयत्न करते थे। वे केवल ढाई हजार रूपये ही वेतन के रूप में लेते थे। राष्ट्रपति के कार्यकाल में उनको कुछ गहरे सदमों को भी झेलना पड़ा। वर्ष 1962 में चीन ने भारत–चीन मैत्री की आड़ में भारत के साथ विश्वासघात करके भारत पर बर्बर आक्रमण कर दिया। वर्ष 1964 में उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्र और भारत राष्ट्रनायक पंडित नेहरू को खो दिया। वर्ष 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया और 1966 में देश को लाल बहादुर शास्त्री का विछोह सहन करना पड़ा। संकट के इन अवसरों पर उन्होंने देश का सफलतापूर्वक मार्गदर्शन किया और भारतीय लोकतंत्र एक पल के लिए भी नहीं डगमगाया। राष्ट्रपति पद से मुक्त होने के बाद 13 मई 1967 को वे निश्चिन्त भाव से दिल्ली से मद्रास चले गये। वहाँ राजनीति से अलग रहकर वे एकान्त में जीवन व्यतीत करने लगे लेकिन देशवासियों को बौद्धिक नेतृत्व प्रदान करते रहे। 1968 में उन्हें साहित्य अकादमी की फलोशिप से विभूषित किया गया। भारतीय विद्या भवन में ब्रह्म 'विद्या भास्कर' की उपाधि उन्हें प्रदान की गयी। 1975 में धर्मदर्शन की प्रगति में योगदान के लिए उन्हें 'टेम्पलटन' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह महान शिक्षा शास्त्री और दार्शनिक राजा 16 अप्रैल 1975 को अपना नश्वर शरीर त्याग कर मोक्ष को प्राप्त हो गया।

दार्शनिक विचारधारा
राधाकृष्णन द्वारा प्रतिपादित दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यही रही है कि हम उसमें प्राचीनतम दार्शनिक धारणाओं से लेकर आधुनिकतम भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक विचारों का विवेचन पाते हैं तथा साथ ही साथ उन सबका समन्वय भी पाते हैं लेकिन फिर भी हम उन्हें समन्वयवादी विचारक मात्र कहने की धृष्टता नहीं कर सकते क्योंकि अपने मौलिक विचारों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के द्वारा एक प्रत्ययवादी दार्शनिक जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं। राधाकृष्णन ने विश्व में भारतीय दर्शन के महत्व को स्थापित करते हुए घोषणा की कि भारतीय दर्शन को अन्य दार्शनिक परम्पराओं से कम समझना एक भूल है। आलोचकों ने भारतीय दर्शन के विरूद्ध जो कुछ लिखा है वह अज्ञानता के कारण हैं। उन्होंने अपने अकाटय तर्को द्वारा भारतीय दर्शन के उज्जवल पहलू को उजागर किया। उन्होंने विश्व को भारतीय दर्शन का वह संदेश सुनाया, जो हमें उच्च आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने की प्ररेणा देते हैं। उनका कहना था कि भारतीय दर्शन उच्च बौद्धिक स्तर पर विशाल एवं सम्पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है। जिसके अध्ययन से हमारे विचार न केवल प्रकाशान्वित होते हैं। बल्कि उनके अध्ययन के पश्चात हम वहाँ नहीं रहते जहाँ पहले थे। वस्तुतः भारतीय दर्शन अपने आप में पूर्ण दर्शन हैं। राधाकृष्णन के दार्शनिक विचारों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

दर्शन का अर्थ
जहाँ पाश्चात्य दर्शन का लक्ष्य मूल दार्शनिक प्रश्नों पर चिन्तन मात्र रहा है, वहाँ भारतीय दर्शन में आत्म साक्षात्कार को ही दर्शन का उद्देश्य माना गया है। राधाकृष्णन का कहना है "बोध चिन्तन और अन्तदृष्टि है और इसलिए दार्शनिक को तब तक शान्ति नहीं मिल सकती, जब तक

वह वस्तुओं और व्यक्तियों के संसार की वह झांकी नहीं पा लेता जिसके द्वारा वह विविध अनुभवों को किसी न किसी उद्देश्य के अभिव्यंजक के रूप में व्याख्या कर सके।"[2] दर्शनशास्त्र का लक्ष्य "वह संश्लेषण की ग्राहयता है जिसमें सृष्टि के सब रूप से अन्तनिर्हित हों। दर्शन शास्त्र "सृष्टि की समस्याओं को जानने का मानव का प्रयास और परम सत्ता की प्रकृति को जानने का प्रयत्न है।"[3] जबकि कला का उद्देश्य उच्च आदर्श की ओर प्रेरित करना है दर्शन शास्त्र सत्य के दर्शन की ओर ले जाता है। इस प्रकार दर्शन केवल विज्ञान की आलोचना या तार्किक सर्वेक्षण या इन्द्रियजन्य निरीक्षण अथवा बौद्धिक विवेचन मात्र न होकर सम्य का दर्शन है। उनके अनुसार "किसी भी विचारधारा के लिए दो प्रारम्भिक आवश्यकताऐं हैं, उसे सत्य का निरूपण करना चाहिए और प्रत्येक नई पीढ़ी के लिए उसकी व्याख्या करनी चाहिए। इस प्रकार दर्शन का उद्देश्य सत्य का ज्ञान देने के साथ–साथ देशकाल के अनुसार उसे नवीन जामा पहनाना भी है। देशकाल बदल जाने से प्राचीन सत्यों को नवीन आवरण में उपस्थित किया जाता है। प्राचीन ग्रन्थ वर्तमान समस्याओं को पूरी तरह हल नहीं कर सकते। भारतीय विचारक स्वयं सदैव जिज्ञासु और गतिशील रहे है। अस्तु, उनके प्रति सम्मान दिखलाने का तरीका यह नहीं है कि हम आँखे बन्द करके उनकी बात को सम्य मानते रहे, बल्कि ज्ञान के क्षेत्र में सदैव आगे बढ़ने की उनकी परम्परा को आगे बढ़ाये चलना ही उनके प्रति सबसे अधिक उपर्युक्त श्रद्धांजलि है। राधाकृष्णन के अनुसार प्रगति का अर्थ पूर्णतया नवीन सृष्टि नहीं, बल्कि अतीत का पुनर्जीवन, सृजनात्मक पुननिर्माण और उसे व्यवस्थित करना है।

तत्व मीमांसा

अपने तत्व मीमांसीय विवेचन में राधाकृष्णन ने सर्वप्रथम परमतत्व तथा ईश्वर में भेद किया था। मूल रूप में अद्वेत वेदान्ती होने के कारण डॉ0 राधाकृष्णन मानते थे कि परमतत्व या ब्रह्म सम्पूर्ण सत्य है। वह निरपेक्ष परमतत्व विश्व से परे हैं। वह सब सत्ताओं, सब विशेषों का अधिष्ठान होते हुए भी स्वयं निर्विशेष है। जब हम परमतत्व को विश्व के अधिष्ठाता के रूप में देखते हैं तो वह ईश्वर कहलाता है। जब परमतत्व की अनन्त संभावनाओं की एक संभावना का जगत के रूप में वास्तविकरण होता है, तब हम उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर सृष्टा के रूप में वैयक्तिक है ईश्वर परम सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम के नाम से जाना जाता है।

परमतत्व तथा ईश्वर के बीच सम्बन्ध की चर्चा करते हुए राधाकृष्णन कहते थे कि ईश्वर मानवीय लक्ष्य की दृष्टि से परिपूर्ण है। विश्व के निरपेक्ष रूप में हम परमसत्ता को ब्रहम कहते हैं और विश्व की सापेक्षता में उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर की यह अवधारणा उनके समन्वय के सामर्थ्य का अनुभव उदाहरण है। इससे यह प्रमाणित होता है कि राधाकृष्णन एक विश्व दर्शन के निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील दार्शनिक रहे थे। राधाकृष्णन ने दूसरे चरण में पदार्थ, जीवन तथा चित्त का विश्लेषण किया था। उनके अनुसार पदार्थ एक विधुत शक्ति है जो गतिशील है तथा सारा जड़ जगत आपस में सम्बन्धित है। देश और काल उसके आवश्यक अंग हैं जिन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है।

राधाकृष्णन दूसरे दार्शनिक की तरह आत्मा को द्रव्य पदार्थ नहीं मानते बल्कि आत्मा को सब सत्ता का अधिष्ठाान मानते थे। वह न तो अन्नमय, न प्राणमय, न मनोमय न विज्ञानमय थे बल्कि इन सबका आधार तत्व है। आत्मा ही विश्वात्मा अथवा चैतन्य है जो अन्य सबको निहित करता है। परमतत्व ईश्वर और आत्मा सभी एक व्यापक तत्व के भिन्न नाम हैं परन्तु साथ ही राधाकृष्णन आत्मा के स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते थे। परमात्मा से एकला की अवस्था भी आत्मा के व्यक्तित्व को हरण नहीं करती। वस्तुतः निरपेक्ष सम्भव नहीं है।

ज्ञान मीमांसा

ज्ञान शास्त्रीय क्षेत्र में राधाकृष्णन ने विभिन्न प्रकार के ज्ञानों का महत्व बतलानें के साथ–साथ उनकी सीमाएं भी दिखलाई हैं। वे बुद्धि और तर्क को दार्शनिक विवेचन में आवश्यक मानते थे किन्तु फिर प्रचीन भारतीय परम्परा में यह विश्वास करते थे कि कोरे बौद्धिक ज्ञान से सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। बुद्धि विश्लेषण के माध्यम से चलती है, जबकि सत्य का ज्ञान के लिए संश्लेषण भी आवश्यक है। बुद्धि प्रत्ययों के माध्यम से काम करती है और शब्दों के माध्यम से तर्क किया जाता है, किन्तु परम सत्य का अनुभव शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह अकथनीय अनुभव है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि तार्किक ज्ञान का अपना कोई लाभ नहीं है। वह उच्चतम ज्ञानी की ओर ले जाने वाला साधन है।

यह जीवन के अनुभव का प्रतिबिम्ब है। यह मनुष्य के अन्तर में निहित है। यह तादात्म्य द्वारा ज्ञान है। इससे बाहर कुछ नहीं है। कुछ भी इसके अतिरिक्त नहीं है। यह ज्ञान का मार्ग और लक्ष्य दोंनो ही है। यह आत्मिक अनुभव है, यह ब्रह्मनुभव है।"[4]

सम्पूर्ण अनुभव धार्मिक अनुभव से भिन्न है। इन धर्मो की आधारशिला है, वह अवर्णनीय है। राधाकृष्णन के शब्दों में, "ईश्वर के साथ एकता का ज्ञान और उससे पैदा होने वाले सम्भ्रम और पूजा की भावनाओं जो हमें केवल अर्न्तज्ञान और अनुभव के कुछ क्षण मात्र प्रतीत होती है, सन्तों के लिए नितान्त सामान्य और सर्वव्यापी वस्तुएं हैं। सम्पूर्ण अनुभव रहस्यात्मक अनुभव है। इस प्रकार राधाकृष्णन के दर्शन में रहस्यवादी तत्व दिखलाई पड़ता है। आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ के एक हो जाने पर परम सत का रहस्य मालूम पड़ता है। यह रहस्यानुभव आत्मा का अनुभव है। सम्पूर्ण अनुभव में, सब मूल तत्व एक दूसरे में मिल जाते हैं और अन्त में सम्पूर्ण, अविभाज्य, अलगनशील पूर्ण बन जाते हैं। जिसमें असंदिग्धता और निश्चय है और संगठन की बहुरूपता के प्रत्येक रूप का उत्तर है। सम्पूर्ण अनुभव प्राप्त हो जाने पर फिर बौद्धिक दृष्टि से क्रमबद्ध किया जा सकता है, क्योंकि बुद्धि और अन्तः प्रज्ञा दोंनो आत्मा से सम्बन्धित है, उसमें निरन्तरता है, यद्यपि भेद भी है, वे परस्परपूरक हैं। राधाकृष्णन के शब्दों में, "अन्तः प्रज्ञात्मक ज्ञान नहीं है, वह असंकल्पनात्मक अवश्य है। वह बौद्धिक अर्न्तज्ञान है जिसमें अव्यवहारिकता और व्यवहारिकता दोंनो ही शामिल हैं। वह न तो अमूर्त विचार और विश्लेषण है और न आकारहीन अन्धकार और न आदिम इन्द्रियजन्य अनुभव हैं।"[5] वह प्रज्ञा है। सम्पूर्ण अनुभव, "वह ज्ञान है जो सम्पूर्ण आत्मा के द्वारा प्राप्त होता है जो किसी भी खण्ड से उच्च है। चाहे वह बुद्धि हो या भावना।"[6] इस सम्पूर्ण ज्ञान से रचनात्मक अन्तदृष्टि से विशेष सहायता मिलती है। इसके लिए बुद्धि को समर्पण करना पड़ता है। बुद्धि, संवेग और संकल्प मानव आत्मा की अपूर्ण अभिव्यक्ति है।

तर्क की अवधारणा

पाश्चात्य एवं भारतीय तर्क के विकास की तुलनात्मक विवेचना करते हुए राधाकृष्णन ने स्पष्ट किया था कि पश्चिम की समूची विचार परम्परा में मनुष्य तत्वतः तार्किक और बौद्धिक प्राणी है। वह केवल तार्किक ढंग से सोच सकता है और उपयोगिता की दृष्टि से कार्य कर सकता है। पश्चिम मन, विज्ञान, तर्क और मानवीयवाद पर बहुत बल देता है। इसके विपरीत हिन्दू विचारों का मत आमतौर पर यह है कि हममें एक ऐसी शक्ति है जो तर्क बुद्धि से अधिक अन्तरात्मवती है और यह जिसके द्वारा यर्थाथ सत्ता को उसकी अधिक घनिष्ठ और आन्तरिक वैयक्तिकता के साथ अनुभव करते हैं, केवल उसकी ऊपरी सतह और बाघ्य पहलुओं को ही नहीं। यही बात उपयोगितावादी दृष्टिकोण की तो भारतीय दार्शनिक परम्परा भी इसकी पक्षधर है, क्योंकि वह स्वयं स्पष्ट कहती है कि "प्रयोजनमनूद्दिरूश्य मन्दों पिनप्रवर्तते"। अस्तु भारतीय एवं

पाश्चात्य परम्पराओं की विधि में पार्थक्य समीक्ष्य हो सकता है, और वह इस रूप में कि भारतीय परम्परा जहाँ ज्ञात को तर्कणापरक बनाती है, वहाँ पाश्चात्य परम्परा तर्कणा से ज्ञात का निर्माण करती है। एक का सम्याश्रित तर्क है, तो दूसरे का तर्काश्रित सत्य है। इसीलिए ऐसा लगता है कि सम्भवतः भारतीय परम्परा में तत्व मीमांसा का स्थायी तत्व प्रमाण मीमांसा की विवशता के पश्चात हुआ किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि तर्क दोंनो ही परम्परओं के लिए साधन है साध्य नहीं।

तर्काश्रित ज्ञान से हम संसार की परिस्थितियों को जानते हैं, और उन्हें अपने उद्देश्य के लिए नियन्त्रित करते हैं रही बात अर्न्तज्ञान की तो वह तर्क विरोधी नहीं है, बल्कि वह तर्क से परे है। यह एक ऐसा ज्ञान है जो समूची आत्मा द्वारा ग्रहण किया जाता है जो अपने ही किसी टुकड़े से चाहे वह प्रत्यक्ष ज्ञान हो या बौद्धिक तर्क से ऊपर है। इस अर्न्तज्ञान को बुद्धि के साथ लगभग वही सम्बन्ध है जो बुद्धि का इन्द्रिय ज्ञान के साथ है। यद्यपि अर्न्तज्ञान बुद्धि से परे की चीज है किन्तु उससे विपरीत नहीं। एकदर्थ जो लोग हर चीज के लिए तर्क की खोज करते हैं, वे एक प्रकार से तर्क को हमेशा के लिए अपदस्थ कर देते हैं, क्योंकि यदि समस्त ज्ञान अपनी प्रमाणिकता के लिए किसी बाहरी कसौटी पर निर्भर हो तब तो कोई भी ज्ञान प्रमाणित नहीं होगा, क्योंकि कारण की अनन्त श्रृंखला का कभी बोध नहीं होगा। अतः इससे बचने का एक ही उपाय है कि हर एक ऐसा भी ज्ञान स्वीकार करें जो स्वतः प्रमाण हो, जिसकी तर्क की अपेक्षा न हो, अपितु तर्क को ही उसकी अपेक्षा हो।"[7]

कर्म सिद्धान्त

प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के साथ राधाकृष्णन ने मानव जीवन में कर्म के सिद्धान्त का महत्व माना है। कर्म के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के वर्तमान भूतकाल से और भविष्य वर्तमान काल से निर्धारित होता है। राधाकृष्णन के शब्दों में "संसार में हर वस्तु कारण भी है और कार्य भी है। उसमें अतीत की ऊर्जा संचित रहती है और वह भविष्य पर अपनी ऊर्जा का प्रयोग करती है। कर्म या अतीत के साथ सम्बन्ध का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य स्वतन्त्र रूप से कोई कर्म नहीं कर सकता बल्कि स्वतन्त्र कर्म तो उसमें अर्न्तनिहित है जो नियम हमें अतीत के साथ जोड़ता है वह इस बात को भी पुष्ट करता है कि हम कर्म के नियम को अपने स्वतन्त्र कार्य से पराभूत कर सकते हैं। हो सकता है कि हमारे संचित कर्म हमारे मार्ग में बाधक बनें, किन्तु वे मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति के आगे उस मात्रा में झुक जायेंगे जिस मात्रा में उसमें गम्भीरता और दृढता होगी। कर्म के सिद्धान्त में कहा गया है कि "जो व्यक्ति जितनी शक्ति का प्रयोग करेगा वह उतना ही फल पायेगा। विश्व व्यक्तिगत जीवन की मांग के प्रति अनुक्रिया करेगा और साथ ही उसे पूरा करेगा। प्रकृति मनुष्य की आग्रहपूर्ण पुकार का उत्तर देगी। इस प्रकार मार्क्स के साथ राधाकृष्णन यह मानते थे कि मनुष्य संसार को बदल सकता है। अपने संकल्प के बल पर वह वर्तमान कर्मो के द्वारा भविष्य का रूप परिवर्तित कर सकता है।

राधाकृष्णन कहते थे कि व्यक्ति को वेदना, भय अपनी तुच्छता का अनुभव, मृत्यु का भय, जीवन में मौजूद विसंगतियों की चेतना आदि उसे प्रमुख रूप से धार्मिक और नैतिक दिशा में प्रेरित करते हैं।

पुनर्जन्म

राधाकृष्णन पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। राधाकृष्णन का कर्म सिद्धान्त में विश्वास ही उनके पुनर्जन्म के सिद्धान्त का आधार था। वे मानते थे कि आत्मा का अगले जन्म में शरीर विशेष को प्राप्त करना पूर्व जन्म के अर्जित कर्म फलों के अनुसार होता है। पूर्व जन्म के बारे में राधाकृष्णन के विचार परम्परागत हिन्दू सिद्धान्तों के अनुसार ही है। वे कहते थे कि आत्मा अपने स्वभाव के अनुकूल शरीर का चुनाव करती है। आत्मा अनादि है, उसमें नैरन्तर्य है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त नैतिक संस्कारों की श्रृंखला को बनाये रखता है।

राधाकृष्णन जीवात्मा की सत्यता के रूप में पुनर्जन्म को स्वीकार करते थे। उनके अनुसार चेतना का सत्त विकास हो रहा है। सत्यता के रूप में चेतना पूर्णता एवं अमरत्व की ओर अग्रसर है। पुनर्जन्म जीवन का अन्त नहीं है। आत्मा का एक स्थूल शरीर से दूसरे स्थूल शरीर को ग्रहण करना ही पुनर्जन्म है। स्थूल शरीर के विनाश से आत्मा का विनाश नहीं होता। पुनर्जन्म उस साधन का परिवर्तन मात्र है, जिसके द्वारा आत्मा क्रिया करती है।"[8]

राधाकृष्णन कहते थे 'पुनर्जन्म काल के आधीन है और जब हम वैयक्तिक सत्ता को स्वीकार करते हैं तब वह अनिवार्य है। जब मनुष्य मानवीयता से ऊपर उठ जाता है और नित्य वस्तुओं से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो वह जन्म पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है, वह मुक्ति ही मनुष्य की सर्वोच्च नियति है।

मुक्ति

राधाकृष्णन का मत था कि अर्न्तज्ञान और अर्न्तदृष्टि ही मोक्ष है। अर्न्तज्ञान के द्वारा व्यक्ति आत्मा साक्षात्कार करता है यही उसकी मुक्ति है। मुक्ति संसारिक जीवन में ही नित्य जीवन की प्राप्ति है। यह सत्ता का एक नया प्रकार है। इसी देश और काल में जीवन का सम्पूर्ण कायाकल्प है। राधाकृष्णन का कहना था कि मुक्ति पाने का अर्थ केवल नैतिक स्तर से आध्यात्मिक स्तर प्राप्त करना ही है। राधाकृष्णन के अनुसार 'व्यक्तिगत मुक्ति पूर्ण नहीं है वरन् पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति का एक आवश्यक अंग है। उनका कहना है कि मुक्ति की अवस्था में मुक्त व्यक्ति ब्रह्म में विलीन नहीं हो जाता है वरन् विश्व के विकास के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। राधाकृष्णन को इस बात की पूरी आशा थी कि विश्व जिस तरह जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति कर रहा है, उसी तरह अपने अन्दर की बुराईयों का नाश कर आध्यात्मिकता की ओर झुकेगा, जिससे सर्वोच्च सामाजिक मुक्ति की स्थापना अवश्यम्भावी होगी। राधाकृष्णन के अनुसार पूर्ण मुक्ति की अवस्था पूर्ण ऐक्य की अवस्था है। यह एक ऐसा जीवन होता है जिसमें सब व्यक्ति एक मन से दूसरे मन में पूर्ण अनुप्रवेश से ऐक्य को प्राप्त करता है। अतः विश्व में पूर्ण समन्वय की स्थापना हो जाये तो पूर्ण मुक्ति सम्भव हो जायेगी और विश्व की समस्त प्रक्रियाओं का अन्त हो जायेगा।

अध्यात्मवाद एवं मानवतावाद

वस्तुतः राधाकृष्णन 'मानवतावादी चिंतक' थे और उन्होंने अध्यात्मवाद में मुख्य रूप से मानवतावाद का समन्वय किया। उसके अनुसार मानवता का पुजारी ही किसी कीमत पर आध्यात्मवादी हो सकता है। इसी प्रकार मानवतावाद को वे अध्यात्म के अभाव में अपूर्ण मानते थे। इसलिए वे 'पश्चिमी मानवतावाद जिसमें अध्यात्म का अभाव है को अपूर्ण एवं अपर्याप्त मानते हैं। उनका मत था कि 'आधुनिक समाज व्यवस्था' को पूर्णतः संतुलित एवं संगठित रखना है तो निश्चित रूप से उसे धर्म, विज्ञान, अध्यात्म तथा मानवता का समन्वय करके पलना होगा क्योंकि किसी एक के अभाव में व्यक्तित्व पूर्णता को समाप्त नहीं कर सकता।

वे हिन्दू धर्म को निवृत्तिवादी नहीं मानते थे। वे कहते थे कि परिवार त्याग कर सन्यास लेना आवश्यक नहीं है। उन्होंने विश्व को ईश्वर का निवास माना है। स्वर्ग एवं तर्क की परिकल्पना भी वर्तमान समाज एवं विश्व को ही दृष्टि में रखकर की है। राधाकृष्णन मनुष्य मात्र से आग्रह

करते थे कि जिस जीवन में सेवा 'भावना' 'यश' तथा आत्मज्ञान की प्रचुरता है उसी के माध्यम से अध्यात्मिक शक्तियों की अभिव्यक्ति होती है वर्षो की एकान्त साधना के बाद गौतमबुद्ध बुद्धत्व को प्राप्त हुए। किन्तु बुद्ध का शेष जीवन सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यो में ही व्यतीत हुआ।

मानव प्रकृति सम्बन्धी अवधारणा

राधाकृष्णन के अनुसार मानव परम तत्व की अभिव्यक्ति है। उसकी रचना में दैहिक तत्व से अध्कि आध्यात्मिक तत्व महत्वपूर्ण हैं केवल विज्ञान मनुष्य की व्याख्या नहीं कर सकता। सही व्याख्या धार्मिक अनुभव से होती है। वह जड़ और जीवन सभी से अधिक संगठित और पूर्ण है। उसका लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्त करना और आत्माभिव्यक्ति थे। वे कहते थे कि "मानव को केवल यंत्र नहीं समझना चाहिए, बल्कि वह ईश्वर की भांति निर्माणकर्ता है, और वह ब्रह्माण्ड के भेद की पूर्ति करता है, उसके विकास को एक सोपान से दूसरे सोपान पर ले जाता है।" इस प्रकार श्री अरविन्द्र के समान राधाकृष्णन ने मानव को सृष्टि में विकास का अग्रदूत माना है। मानव अपने परिवेश से ऊँचा उठ सकता है। वह परिवेश का नियन्त्रण कर सकता है, उसे बदल सकता है, इसी में उसकी मानवता निहित है। मानव का पूर्ण प्रयत्न अपने को पहचानना और उसके द्वारा सर्वव्यापी जीवन को बढ़ाना हैं, जिसका की वह पूर्ण अंश है। राधाकृष्णन ने आदर्श मानव का जो चित्र खींचा है वह गीता के स्थितप्रज्ञ की धारणा से लिया गया है। स्थितप्रश्र आत्यात्मिक मनुष्य है। वह संसार में ईश्वरीय शक्ति के रूप में कार्य करता है। राधाकृष्णन के शब्दों में "जब मानव परमसत्ता का साक्षात्कार करता है, मूर्त में लौट आता है और सत्य की दृष्टि से अपने जीवन को निर्धारित करता है, तब वह पूर्ण पुरूष हो जाता है।"[9]

मानव प्रकृति की व्याख्या करने में राधाकृष्णन ने उसकी सामाजिकता पर भी बल दिया है। मूल रूप से मानव में जो आत्मा विद्यमान है वहीं उसके बाहर भी सब कहीं है।

इसके लिए धर्म और आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। मनुष्य की विशेषता उसकी सृजनात्मक तथा आत्ध्यात्मिक शक्ति है। इनकी तृप्ति हुये बिना वाहय रूप से वह कितना भी समृद्ध क्यों न दिखायी देता हो, वह असफल है।

धर्म दर्शन

आधुनिक युग में राधाकृष्णन भारतीय संस्कृति के प्रमुख व्याख्याता माने जाते थे। उनके अनुसार सच्ची धार्मिकता का विनाश आधुनिक जगत का सबसे बड़ा संकट है। आन्तरिक बोध का स्थान बुद्धि और विवेक ने ले लिया है। इससे आध्यात्मिक संस्कृति को बड़ा आघात पहुॅचा है। मानव जीवन लक्ष्यहीन हो गया है और जातीय, प्रजातीय तथा राष्ट्रीय पूर्वाग्रहों के थपेड़ो से आन्दोलित होता रहता है। आन्तरिक आत्मा की अवहेलना से व्यक्तिगत सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के सभी पहलुओं पर अशान्ति, अव्यवस्था और असन्तुलित दिखाई पड़ता है। इस आधुनिक सांस्कृतिक, सामाजिक विघटन को रोकने का एकमात्र उपाय धर्म को फिर से उसके स्थान पर प्रतिष्ठित करना है। राधाकृष्णन के शब्दों में, धर्म मनुष्य में जो कुछ सर्वोच्च है वह हमें दे सकता है, वह रचनात्मक तत्व से हमारा सतत सम्पर्क स्थापित कर सकता है, जिसकी अभिव्यक्ति जीवन है, वह ऐसा दैवी संकल्प, सौम्यता, आन्तरिक शान्ति दे सकता है जिसकों कोई भी उदवेग अशान्त नहीं कर सकता और कोई भी अत्याचार हिला नहीं सकता। मानव जीवन में धर्म की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। धर्म ने ही मानव की अध्यात्मिक और नैतिक चेतना को जागृत कर उसके जीवन को सुव्यवस्थित किया है। राधाकृष्णन ने धर्म को व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के साधन के रूप में स्वीकार किया है। अतः धर्म व्यक्ति के विकास का अद्वितीय साधन है। मनुष्य के लिए धर्म का अनुसरण करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि धर्म से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। धर्म–मानव में प्रेम और विश्व बन्धुत्व की भावना को जागृत करता है। मानव में एकता का संचार करता है। धर्म ही मानव की आध्यात्मिक और नैतिक चेतना को जागृत कर उसके जीवन को सुव्यवस्थित करता है। राधाकृष्णन के अनुसार– "यदि धर्म जीवनमय और व्यापक नहीं है, यदि वह मानव–जीवन के प्रत्येक रूप में प्रवेश नहीं करता और प्रत्येक मानव कार्य को प्रभावित नहीं करता तो वह केवल वाहयाडम्बर मात्र है, यथार्थ या सत्य नहीं है।" राधाकृष्णन ने ऐसे धर्म को अयथार्थ और असत्य कहा है, जो मानव–जीवन के प्रत्येक पक्ष में सहायक नहीं होता है। धर्म व्यक्ति को संसरणात्मक जगत से ऊपर उठाकर निर्विकार शुद्ध चैतन्यभाव में पहुॅचा देता है।

राधाकृष्णन के अनुसार– "धर्म का उद्देश्य हमें अपनी क्षणिक और अर्थहीन एकदेशीयता से ऊपर उठाकर नित्य को सार्थकता और उच्च स्थिति तक पहुॅचाना और जीवन की अराजकता और व्यामोह को विशुद्ध और अमरत्व में, जो उसकी आदर्श सम्भावना है। रूपान्तरित करना है।"[10]

सर्वधर्म सम्न्वय

राधाकृष्णन धर्म को मानव जीवन में आवश्यक थे। उनके विचार में आज के मनुष्य को विशेष धर्म, विश्वास या संस्कृति तक ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहिए। वे हर मनुष्य को एक ही विश्व परिवार का सदस्य मानते हैं। उनके विचार में आज के मनुष्य को विशेष धर्म, विश्वास या संस्कृति तक ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहिए। वे हर मनुष्य को एक ही विश्व परिवार का सदस्य मानते थे। उनका कहना था कि एक विश्व के आदर्श के लिए मनुष्यों को जातिगत, वर्गगत, आर्थिक और धार्मिक भेदों को समाप्त कर देना चाहिए। मनुष्य जातीय प्रभेद, अन्याय धार्मिक असहनशीलता का निराकरण एक धर्म के स्वीकार्य से ही कर सकता है। उनके विचार में धर्मो में प्रतीत होने वाले भेद ऊपरी हैं जिन्हें आसानी से दूर किया जा सकता है। उनका कहना था कि धर्मो के बीच भेद महत्वपूर्ण इसलिए मालूम होते हैं कि हम अपने धर्मो के मूल सत्य के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखते। सभी धर्मो में सामान्य तथ्य निहित है।"[11] वे कहते थे कि एक स्थल पर विभिन्न धर्म सहयोगी की तरह सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति में निमग्न है कहने का तात्पर्य यह है कि राधाकृष्णन की दृष्टि से सभी धर्म मूलतः एक है और उनकी जड़ में एकता निवास करती है। एक धर्म का दूसरे धर्म से भेद, धर्म के अनावश्यक तथ्यों को लेकर दिखायी देता है। राधाकृष्णन ने सिर्फ ईश्वर की एकता पर ही बल नहीं दिया है, बल्कि उनके विचारों में ईश्वर की उपासना करने वाली उपासक आत्मा से भी एकता है। सभी धर्मो में रहस्यात्मक अनुभूतियाँ होती हैं। सभी अनुभवकर्ताओं ने अपने–अपने ढंग से परम सत्ता का वर्णन करने का प्रयास किया है। यद्यपि धार्मिक अनुभूतियाँ तत्वतः समान होती हैं, फिर भी वाहय रूप में उनमें भेद दृष्टिगोचर होता है। धार्मिक अनुभूति को राधाकृष्णन देश, संस्कृति एवं काल के आधार पर स्वीकार करते हैं। उनके विचार में हर व्यक्ति व्यक्तिगत पूजा–उपासना अपना सकता है, इसलिए धर्मो में वाहय एवं क्रियात्मक पहलू में विषमता दिखलाई देती है।

धर्म और नैतिकता

राधाकृष्णन के अनुसार नैतिकता धर्म का अभिन्न अंग हैं जिस प्रकार धर्म की नींव नैतिकता पर आधारित है उसी प्रकार नैतिकता का आधार धर्म है। वे धर्म और नैतिकता को सामाजिक कल्याण के लिए परम आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार करते थे। धर्म में सामाजिक व्यवस्था के लिए अनिवार्य मानते थे। राधाकृष्णन के अनुसार आध्यात्मिक चेतना के द्वारा ही व्यक्ति नैतिकता को समझ सकता है। आध्यात्मिक चेतना सें

सजीव व्यक्ति अपने कार्यो को बिना सोचे समझे केवल इसीलिए कि सभी लोग करते हैं, नहीं करता है, बल्कि वह अपने पूर्ण अस्तित्व के साथ इन परिस्थितियों का सामना करना है।

राधाकृष्णन के अनुसार सत्कर्म का बोध ऐसा ज्ञान है जिसका निर्भर मुख्य की सत्ता के अधिक गहरे स्तर से फूटता है अनुशासन और चिन्तन के द्वारा अपनी चेतना को विशुद्ध करना ही नैतिक चेतना का विकास करना है। यही सतकर्म का सही ज्ञान है। अन्तर्ज्ञान युक्त नैतिक चेतना ही अच्छाई को पूर्ण और सहज रूप से समझ सकती है। ऐसा व्यक्ति नैतिकता को सच्चे अर्थो में निर्धारित करने में सक्षम हो जाता है।

आध्यात्मिक चेतना के द्वारा ही व्यक्ति नैतिकता को समझ सकता है और उसे निर्धारित कर सकता है। अतः राधाकृष्णन के अनुसार नैतिक जीवन में भी उच्चतम स्थिति पर पहुॅचाने के लिए अन्तर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है।"[12]

निष्कर्ष

राधाकृष्णन के दार्शनिक विचारों का अध्ययन करने के बाद हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुॅच सकते हैं कि राधाकृष्णन दर्शन के महान व्याख्याकार थे। उनके दर्शन का अपना एक दृष्टिकोण अवश्य है तथापि उनका दार्शनिक धरातल वेदान्तीय विचारों से अनुप्राणित है। उनकी मौलिकता इसी तथ्य में है कि उन्होंने आधुनिक जीवन, जो कि आत्म चेतना का युग है, की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में वेदान्त के आध्यात्मावादी दृष्टिकोण की अभिनव व्याख्या की और नव्यवेदान्त की स्थापना की। उनके दर्शन में सर्वागींण दृष्टिकोण, समन्वय, मानवतावाद और अन्तर्राष्ट्रीयवाद मिलते हैं। इसीलिए उनको आधुनिक युग में मानव चेतना का प्रतिनिधि दार्शनिक कहा जाता सकता है। उनके अपने शब्दों में, "हमें विश्व की एकता के लिए कार्य करना चाहिए। हमें एक ऐसी नयी पीढ़ी का निर्माण करना चाहिए। जिसका विश्वास आध्यात्मिक जीवन की महानता पवित्रता तथा मानवता के प्रति भ्रातृभाव तथा प्रेम एवं शान्ति में हो।"[13]

राधाकृष्णन के द्वारा प्रतिपादित दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण विषेशता यही रही है कि हम उसमें प्राचीनतम दार्शनिक धारणाओं से लेकर आधुनिकतम भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक विचारों का विवेचन पाते हैं तथा साथ ही उन सबका समन्वय भी पाते हैं। उन्होंने विश्व को भारतीय दर्शन का वह संदेश सुनाया, जो हमें उच्च आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। उनका कहना था कि भारतीय दर्शन उच्च बौद्धिक स्तर पर विशाल एवं सम्पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है जिसके अध्ययन से हमारे विचार न केवल प्रकाशान्वित होते हैं। बल्कि उनके अध्ययन के पश्चात हम वहाँ नहीं रहते जहाँ पहले थे। वस्तुतः भारतीय दर्शन अपने आप में पूर्ण दर्शन हैं। उनके अनुसार "किसी भी विचारधारा के लिए दो प्रारम्भिक आवश्यकताएं है, उसे सत्य का निरूपण करना चाहिए और प्रत्येक नई पीढ़ी के लिए उसकी व्याख्या करनी चाहिए। इस प्रकार दर्शन का उद्देश्य सत्य का ज्ञान देने के साथ–साथ देशकाल के अनुसार उसे नवीन जामा पहनाना भी है।

सन्दर्भ सूची

1. प्रेमा नन्द कुमारः सर्वपल्ली राधाकृष्णन, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली 1998, पृष्ठ 166
2. राधाकृष्णन, एस0: 'एन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ जार्ज एलिन एण्ड अनिविन 1947 पृष्ठ 15–16
3. राधाकृष्णन, एस0: 'द फिलॉसफी ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर' गुड कम्पेनियन्स, बड़ौदा 1961 पृष्ठ 101
4. शर्मा, रामनाथः 'समकालीन भारतीय दर्श पृष्ठ 322–323
5. राधाकृष्णन, एस0: 'एन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ जार्ज एलिन एण्ड अनिविन 1947 पृष्ठ 153
6. राधाकृष्णन, एस0: 'एन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ जार्ज एलिन एण्ड अनिविन 1947 पृष्ठ 147
7. पाण्डेय, श्रीप्रकाशः 'प्रज्ञा' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, अंक 34, भाग–2, 1989 पृष्ठ 58–59
8. राधाकृष्णन, एस0: 'एन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ, पृष्ठ 360–361
9. राधाकृष्णन, एस0: 'ईस्टन रिलिजन्स एण्ड वैस्टर्न थॉट, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन
10. राधाकृष्णन, एस0: 'जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि राजकमल प्रकाश, दिल्ली, 1967 पृष्ठ 152
11. राधाकृष्णन, एस0: रिकवरी ऑफ फेथ, (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 188
12. राधाकृष्णन, एस0: रिकवरी ऑफ फेथ, (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 244
13. राधाकृष्णन, एस0: 'रिलीजन एण्ड सोसायटी–जार्ज एलेन एण्ड अनविन लन्दन 1947, पृष्ठ 17